International Journal of Research in Economics and Social Sciences (IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 6 Issue 12, December- 2016
ISSN (o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.225 | Thomson Reuters Researcher ID: L-5236-2015

"जे. कृष्णमूर्ति की दार्शनिक एवं शैक्षिक दृष्टि"

डा0 सतनाम सिंह

एम0ए0 इतिहास, एम0एड0

एम0फिल (एजुकेशन)

एम0ए0 राजनीति शास्त्र

पीएच0डी0 (एजुकेशन)

चिंतन – प्रधान भारतीय संस्कृति का केन्द्र बिन्दु मनुष्य रहा है। इसमें मनुष्य की रचना से लेकर उसके वैश्विक परिवेश तक का विवेचन किया गया है। इस विवेचना ने ही दार्शनिक मार्गों का अन्वेषण किया, परन्तु अभी भी मनुष्य की पूर्ण खोज एवं निश्चित अवधारणा नहीं बन सकी। इस वैचारिक यात्रा में अनेक ऋषियों, महर्षियों, आचार्यों, वैज्ञानिकों, शिक्षाशास्तियाँ, समाजशास्त्रियों, दार्शनिकों तथा विचारकों का योगदान रहा है। भारत के सुदूर पूर्वोतर से लेकर सागर पर्यन्त तथा पश्चिमी सीमाओं से लेकर दक्षिण तक फैले उर्वरा भूखण्ड में प्रकृति ने जो शस्य श्यामला वसुंधरा प्रदान किया है उसी ने माँ भारती के ऐसे उपासकों और अध्येताओं की पूँजी भी हमें दी है जिसने अपने प्रज्ञा प्रकाश से पूरे विश्व को आलोकित किया है तथा विश्व गुरू का पद प्राप्त किया है। इसी श्रृंखला में बीसवीं शताब्दी के महान विचारक जिड्डू कृष्णमूर्ति का नाम आता है। उच्चस्तर तक की शिक्षा प्राप्त कृष्णमूर्ति जी में भावुकता आध्यात्मिकता एवं धार्मिक प्रवृत्ति कूट– कूट कर भरी थी। डॉ. एनीवेसेन्ट के सम्पर्क में आने के बाद वे विदेश में शिक्षा ग्रहण करने चले गए, जिससे इनपर कीट्स, शैली एवं शेक्सपीयर का गहरा प्रभाव पड़ा और इनमें वैचारिक करूणा, दया तथा प्रेम की उदात्त भावनायें विकसित हो गई।

इनका मानना था कि आपके भीतर प्यार है तो बाहरी दुनियाँ में ईश्वर को तलाश करने की आवश्यकता नहीं परन्तु प्यार उत्पन्न करने के लिए आत्मज्ञान, आत्मशोध आवश्यक है। प्रेम से

ही जाति, धर्म, क्षेत्र, संस्कृति के बन्धन कट सकते हैं, इनसे युक्त मानव ही पूर्णा मानव है। आज का मानव तो तृष्णा, हिंसा, प्रतिस्पर्धा, द्वेष से दबा जा रहा है। यहाँ तक कि धर्म के नाम पर भी वह ठगी एवं प्रवचना का शिकार हो रहा है। उन्होंने मानव और ईश्वर की जटिलता के सन्दर्भ में कहा कि "ईश्वर को जानने के लिए पहले मतिष्क को जानो, यह कठिन एवं अत्यन्त जटिल है। यह आसान नहीं है, इसे जानना होगा"

कृष्णमूर्ति जी के अनुसार मस्तिष्क की यही क्रिया प्रणाली मनुष्य से अतिरिक्त शक्तियों पर विचार करती है। केवल सोचती है, चिंतन करती है उसे निश्चित नही कर सकती, क्योंकि "हमारा मस्तिष्क एवं ज्ञान समस्या समाधान के प्रति अनुकूलित है, अभ्यस्त एवं शिक्षित है। इस प्रक्रिया से समस्या का जन्म होता है, इनसे और अधिक चिंतन हो सकता है, समस्या समाधान के मार्ग की ओर जाने में सहायता मिल सकती है पर समाधान कठिन है" भारतीय दर्शन ज्ञान को एक शक्ति और अप्रतिम मानवीय विशेषता मानता है। यहां तक कि ज्ञान से बड़ी किसी अन्य शक्ति को स्वीकार भी नहीं करता है। यही तो सद्–असद् की विवेचन शक्ति है। संभवतः इसीलिए कृष्णमूर्ति जी ने विचार एवं चिंतन करने की शक्ति को अलग–अलग रूपों में परिभाषित किया है और दोनों को ज्ञान रूप से अलग माना है। केवल ज्ञान से ही कोई विचार नहीं हो सकता। "विचार के लिए अनुभव एवं ज्ञान दोनों आवश्यक है। चिंतन तो पर्दाथगत होते है पर विचार पदार्थ कमी प्रक्रिया से जुडे होते है।" सही चिंतन और सही विचार में अन्तर है, सही चिंतन एक स्थिर जागृति है। चिंतन धारा प्रवाहमान है, उसमें गति है, विचार को श्री कृष्णमूर्ति जी स्थिर मानते हैं। चिंतन को इन्होंने विचारण भी कहा है, अर्थात विचारण सतत चलते रहना अथवा चिंतन करना है। "सही विचार तो समाज द्वारा निर्धारित एवं हस्तातंरित होते है या इन्हें समाज की प्रतिक्रिया कहा जा सकता है। सही विचार तो अचल होते है, जिनमें निश्चित अवधारणा एवं दर्शन का प्रवाह होता रहता है।" यह प्रवाह चिंतन की गति के साथ चलता है, जिस पर सामाजिक, आर्थिक, नैतिक, धार्मिक परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है, इसलिए चिंतन जब स्थिर हो जाता है तो वह

विचार का स्थान ले लेता है।

कृष्णमूर्ति जी ने मानव विचार एवं सत्य की पहचान का जो मार्ग तय किया है उसके अनुसार ज्ञान के तीन रूप हो सकते है :– एक वैज्ञानिक ज्ञान है जिसमें हम तथ्यों के आधार पर वर्गीकरण करते है दूसरा सामूहिक ज्ञान है जिसमें मनुष्य तथा मनुष्य प्रकृति का सम्बन्ध निर्धारित करते है एवं तीसरा वैयष्टिक ज्ञान है जो मानव के अन्तः करण से है। यही वास्तविक सत्य एवं शुद्ध ज्ञान है। इसी को विचार की प्रक्रिया से सम्बद्ध करने की बात कृष्णमूर्ति जी करते हैं। यह वास्तविक ज्ञान बुद्धि के निष्पक्ष होने पर उत्पन्न होता है। वास्तविक ज्ञान आंतरिक सत्ता का प्रतीक है, इसको चेतना द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। "इसी ज्ञान में स्मृति और अनुभव सुरक्षित रहते हैं, यही ज्ञान स्वयं के लिए भी होना चाहिए परन्तु वह भी स्वयं का ज्ञान अन्तिम नहीं है, यह केवल अपने को खोलकर विस्तृत करना है।

विचार, सत्ता एवं उसकी प्रकृति को लेकर कृष्णमूर्ति जी ने जिन आध्यात्मिक एवं वैचारिक दृष्टि का नियोजन किया है, उसमें केवल कल्पनायें अथवा दार्शनिक अतिशयता नहीं है अपितु उसमें ज्ञान को महत्वपूर्ण बिन्दु के रूप में देखा गया है। उन्होंने ने कहा है कि "ज्ञान निश्चित रूप से अनिवार्य है परन्तु उसकी सीमाएं है और इसी ज्ञान का एक अंश अधिगम है। अपने आस–पास की वस्तुओं को देखो, उनसे सीखो। केवल बाहर ही मत देखो अपने भीतर भी देखो। अपने व्यवहार विचार एवं जीवनचर्या को समझो । जब तक हम सहन करने की स्थिति में रहेंगे तब तक सीख नहीं सकते। सीखने के लिए जिज्ञासा एवं स्वतन्त्रता आवश्यक है, सीखना अतिविशिष्ट एवं अनन्तः है। यदि आप अपने को समझ गये तो पुस्तक से अधिक सीख गये।" यद्यपि अपने विषय में जानने की प्रक्रिया जटिल ही नहीं व्यावहारिक दृष्टि से असंभव भी लगती है, परन्तु भारतीय दर्शन एवं शिक्षाशास्त्रियों, मनोवैज्ञानिकों ने भी अन्तर्दर्शन प्रणाली को मान्यता दी है और उसे सही तथा औचित्यपरक भी माना है। आत्म निरीक्षण एवं आत्म मूल्यांकन करने वाले व्यक्तियों को ही हम महात्मा कहते है। सभी लोग ईमानदारी पूर्वक आत्म मूल्यांकन

न तो कर सकते है और न सक्षम होते हैं।

जे कृष्णमूर्ति ने मानव की दुर्बलता को पहचानते हुये इस बात का संकेत किया कि मानव तब कमजोर हो जाता है जब वह अपने भीतर के द्वन्द्व में फँस जाता है। उन्होंने कहां "मैं मरना नहीं चाहता परन्तु जैसा हूँ वैसा निरन्तर नहीं रहना चाहता। हमें अपने आप के अन्तर्विरोध संघर्ष कमजोर बनाते है। यदि हमारे अन्दर इच्छाशक्ति है तो हमें कोई कमजोर नहीं बना सकता, यही इच्छाशक्ति हमारी चेतना है।" दृढ इच्छा शक्ति मानव की एक बड़ी पूँजी होती है, जो उसके व्यक्तित्व को समायोजन तथा संघर्ष एवं सक्रियता की ओर ले जाती है। पर बाह्य दोषों के कारण उसकी इच्छा शक्ति निर्बल हो जाती है। यह जिजीविषा को दृढ भी नहीं कर पाता और भौतिक उपादानों से सहज ही पराजित हो जाता है। उन्होंने इस कमजोरी का संकेत करते हुये कहा कि "जब तक आपमें हीनता का भाव है तब तक आप नयी दुनियाँ नहीं बना सकते। यदि आप में नफरत का भाव है तभी आप छोटे हैं, हीन हैं। आप सब कुछ प्राप्त कर सकते है, परन्तु यदि भीतर से भयभीत हैं। नफरत करते हैं तब तक कुछ नहीं कर सकते। आप निर्भय होकर बुद्धि का विकास कीजिए।" हमारे शास्त्रों में भय को मूल प्रवृति नहीं माना गया है। परन्तु समाज के लोग बचपन से ही हमारे मस्तिष्क पर झूठ, चोरी के साथ–साथ भय का भाव भी आरोपित करते रहते है और परिपक्वता अवस्था तक पहुंचते–पहुंचते व्यक्ति के स्वभाव और व्यक्तित्व का एक मुख्य हिस्सा भयग्रस्त हो जाता है।

जे कृष्णमूर्ति ने शिक्षा को जीवन के बेहतर तरीके के रूप में देखा है और कहा है कि शिक्षा शुद्ध चेतना के विस्तार से सम्भव है। उन्होंने संकेत किया कि "शुद्ध चेतना विचारातीत है व भाषा से भी परे है, अशाब्दिक है। शब्द यर्थाथ नहीं होते। चेतना विचार द्वारा अनिर्धारित है, इसी चेतना का विस्तार होना चाहिये। यह तब सम्भव है जब हम लघुता समाप्त कर स्वयं का विस्तार करें।" आत्म विस्तार के लिए बाहर से बच्चों को देने का प्रयास न करें। आज के अभिभावक सासारिक भौतिकवाद और भाग–दौड़ की दुनियाँ में रहते हुये अपने बालकों के कोमल मन पर पुस्तकीय

ज्ञान का एक बहुत बड़ा बोझ लाद देते है, और बालक न तो पूर्ण मानव बन पाता है और न ही योग्य नागरिक । उन्होंने इस बिन्दु पर विचार करते हुये कहा कि अभिभावक अपने बच्चों को सदा कुछ करने का आदेश देते रहते है परिणामस्वरूप बच्चे में संघर्ष और विरोध पनपता जाता है" यही संघर्ष उन्हें वास्तविक चिन्तन और यर्थाथ से अलग कर देता है उनके मस्तिष्क पर दूसरे के थौपे गये विचारों का प्रभाव पड़ जाता है। यदि हम सावधानी से दार्शनिक एवं शैक्षित मान्यताओं पर विचार करें तो स्पष्ट होता है कि दर्शन जहां मानव जीवन का लक्ष्य निर्धारित करते हैं वहीं शिक्षा एक साधन के रूप में उन लक्ष्यों को प्राप्त करने का मार्ग बनती है, परन्तु दर्शन एवं शिक्षा का अभिन्न संबंध है। इसलिए प्रत्येक दार्शनिक मान्यताओं में किसी न किसी प्रकार की शिक्षा निहित होती है। दर्शन में चिंतन एवं विचार करने की प्रबल प्रक्रिया चलती रहती है, इसलिए शिक्षा को केवल प्रासंगिक या सम–सामयिक दृष्टि से निर्धारित करना ही दर्शन का कार्य नहीं है, अपितु उसके लिए भविष्य की योजनाएं भी निर्धारित करना पड़ता है। जे. कृष्णमूर्ति जी भी दार्शनिक एवं शिक्षाविद् हैं। वे वर्तमान शिक्षा में उन दोशों को गहराई से समझते हैं जो केवल बौद्धिक हैं। बालक में सामाजीकरण, मूल्य निरूपण एवं मौलिकता तथा सृजनशीलता का अभाव दिखाई दे रहा है। इसलिए आधुनिक शिक्षा की विसंगति से शिक्षा जगत को सावधान कराते हुए उन्होंने स्पष्ट रूप से यह कहा है कि बालक को परिवेश के अनुसार स्वतः विकास करने का अवसर देना चाहिए। उसे आरोपित किए गए मानवीय ज्ञान के भार से न दबाया जाय। उसकी जिज्ञासाओं को कुंठित होने से बचाया जाय।

अन्ततः हम कह सकते है कि जे. कृष्णमूर्ति का दर्शन और शैक्षिक विचार पूर्णतया भारतीय संस्कृति और परम्परा के प्रतिनिधि है, फिर भी वे विचारवाद की दृष्टि से जहाँ आदर्शवाद के निकट है वही शुद्ध चैतन्य आत्मतत्व की बात कर हमारे उपनिशदों तथा वेदान्त से प्रभावित हैं। मुक्त एवं स्वभाविक शिक्षा की आवश्यकता तथा औचित्य बताते समय जहाँ वे प्रकृतिवाद के करीब हैं वहीं विज्ञान और जीविकापार्जन को अनिवार्य मानते हुये यर्थाथवाद के निकट है। सामाजिक

गुणों एवं बालक में राष्ट्रीय मूल्यों की आवश्यकता बताते हुये जहाँ वे प्रयोजनवादी दृष्टिकोण रखते है वहीं वैश्विक कल्याण एवं एकात्म तत्व का समर्थन करते समय मानवतावाद के निकट जाते हुये प्रतीत होते हैं। इस महान शिक्षाविद् एवं दार्शनिक की मान्यतायें स्वतन्त्र न होते हुये भी सर्वव्यापी एवं समन्वयवादी भावना का परिपोषण करती हैं तथा आधुनिक भारतीय शिक्षा के लिए एक ऐसी दृष्टि का प्रतिपादन करती है जहाँ स्वार्थ, कुंठा, ईष्या, द्वेष से मुक्त होकर बालक पूर्ण भारतीय परिवेश में भारतीय संस्कृति की मान्यता और परम्परा के अनुसार शिक्षा ग्रहण कर सकता है साथ ही उसे अपने व्यक्तित्व के निर्माण में स्वानुभव, प्रेरणा और वैचारिक चिंतन को पूर्ण अवसर मिल सकेगा। परम्पराओं से हटकर भी वह मूल्यों को आत्मसात् करने से अलग नहीं रह सकता।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. Life Ahead – P.69
2. The Network of Thought – P.89
3. Ibid – P. 89
4. Commenteris on Living, V.3 – P. 188
5. Commenteris on Living, V.3 – P. 186
6. Letters to the Schools, V.3 – P. 76
7. Commenteris on Living, V.2 – P. 75-76
8. Life Ahead, - P. 76
9. Life Ahead, - P.187
10. Life Ahead, - P. 167